Vageeshwari *Dec. 2020, Vol. 34*
ISSN 0975-7872

प्राचीन ताल पद्धति

डॉ. अजय कुमार
सहायक प्रोफेसर, संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार

भारतीय ताल पद्धति के मूल सिद्वांतों का निरूपण संगीत के अन्य विषयों की तरह 'नाट्यशास्त्र' में ही उपलब्ध होता है, इसलिये ताल की दृष्टि से भी इसे आधार ग्रंथ माना गया है। तत्कालीन ताल पद्धति का इस ग्रंथ में सूक्ष्म एवं पूर्ण विवेचन किया गया है। जिसे समझने के लिये एकमात्र सहायक एवं प्राप्य ग्रंथ अभिनवगुप्त कृत 'अभिनवभारती' टीका एवं बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा अनुवादित हिन्दी नाट्य शास्त्र है तथा नाट्यशास्त्र में स्थापित सिद्धांतों का सूत्र शैली में स्पष्टीकरण 'संगीतरत्नाकर' से प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र के 31वें अध्याय में, मानसोल्लास के 16 वें अध्याय में, संगीतरत्नाकर के 5वें अध्याय में एवं अभिनवभारती में मूलग्रंथ के अनुसार ताल का विशद् विवेचन किया गया है।

ताल पद्धति : प्राचीन काल में ताल की दो प्रमुख पद्धतियॉ प्रचलित थी–

(i) मार्गी ताल पद्धति (ii) देशी ताल पद्धति

मार्गी ताल पद्धति के अन्तर्गत आचार्य भरत ने पॉच तालों की विशद् चर्चा की है, जो इस प्रकार हैं। चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, सम्पकवेष्टाक और उदघट्ट। इनमें से प्रथम दो प्रमुख हैं और यही दोनों चतुरश्र और त्रस्य के प्रतिनिधि ताल माने जाते हैं यद्यपि षट्पितापुत्रक का सर्वाधिक प्रयोग होता है। नाट्यशास्त्र में मात्राओं के तीन स्वरूप बताये गये हैं। लघु, गुरू और प्लुत। 1 मात्रा काल को लघु, 2 मात्रा काल को गुरू एवं 3 मात्रा काल को प्लुत माना गया।

शारंगदेव ने देशी की व्याख्या करते हुये कहा है कि देश अथवा प्रांत के जन जन में प्रयुक्त रूचिपूर्ण एवं मन को भाने वाले लोक प्रिय गायन, वादन एवं नृत्य देशी कहे गये। विभिन्न जाति संप्रदाय आदि में व्याप्त देशी संगीत, कहे गये। संगीतरत्नाकर में तालों की रचना के लिये चिन्हों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। शारंगदेव ने द्रुत के लिये ½ मात्राकाल, लघु के लिये 1 मात्राकाल, गुरू के लिये 2 मात्राकाल एवं प्लुत के लिये 3 मात्राकाल बताये है तथा इनके चिन्ह द्रुत–0, लघु-I, गुरू–S, प्लुत Ś, एवं विराम के लिए ‿ बताये गये है। द्रुतादि अवयवों के विभिन्न प्रकार के सनिवेशों के आधार पर देशीताल के अनेक प्रकार हैं। संगीतरत्नाकर में दिये गये 120 देशी तालों के सम्पूर्ण लक्षण विस्तारपूर्वक इस शोध पत्र में बताये गये हैं।

संकेत शब्द

ताल, मार्गी, देशी, लघु, गुरू

काल अदृश्य, अनन्त एवं समस्त ब्रहमाण्ड में व्याप्त है। यह गतिमान है इसलिये सदा आगे की ओर बढ़ता रहता है। काल के इस आगे की बढ़ने की प्रक्रिया से मनुष्य को काल के व्यतीत होने की अनुभूति हुई। इस अनन्त, असीम काल को समझने के लिये मानव ने उसे वर्ष, मास, दिन, घंटा, मिनिट एवं सैकेण्ड आदि में विभाजित किया, क्योंकि बिना विभाजन किये काल को समझना असम्भव था। इसी प्रकार संगीत में प्रयुक्त होने वाले समय को समझने के लिए 'काल प्रमाण' अर्थात् 'ताल' की उत्पत्ति हुई। सर्वप्रथम गति व लय का बोध हुआ फिर उससे ताल का सृजन कर संगीतोपयोगी बनाया गया। संगीतशास्त्र में 'लय' ताल की जननी कहलाती है। लय अपने आप को एक चक्र में बांधकर मापक यंत्र के रूप में धारण कर लेती है, जिसे हम ताल कहते हें। लय से मात्रा एवं मात्रा से ताल का निर्माण होता है। लय अपने को एक चक्र में बांध कर प्रबल और अवल ध्वनियों के रूप में गति खंड बन जाते हैं। प्रबल तथा अवल ध्वनियों से युक्त लय खंडों का समूह ही भारतीय संगीत में ताल के रूप में प्रस्फुटित हुआ और यह ताल ही संगीत में लगने वाले समय को मापने का साधन बना। वस्तुतः गति से ही 'ताल' का उद्भव हुआ। लय की काल तथा क्रिया को नियंत्रित करने पर 'ताल' का उद्भव होता है। लय स्वयं एक व्यापक एवं अखंडित क्रिया है। इसको वांछित अंतराल से बांधकर 'क्रिया' से दर्शाना ही 'ताल' कहलाता है। ताल चक्र में एक ध्वनि प्रबल एवं दुसरा अवल सुनाई देती है, क्योंकि मानव के कानों को एक सी ध्वनि ग्राह्य नहीं होती। ध्वनि का प्रबलत्व तथा अवलत्व ही गति की एकरसता का निराकरण करता है।

भरतयुग के पश्चात् संगीत का जन–जन में प्रचार–प्रसार होने लगा था। यद्यपि भरत के पश्चात् शारंगदेव के समय के सभी ग्रंथकारों ने भरत मत का पालन किया परन्तु वह देशी के रूप में परिवर्तन होने लगा। 'नन्दिकेश्वर' ने भरतमत से हटकर द्रुत, लघु, प्लुत एवं काकपद इन मात्रिक काल प्रमाणों को अपने ग्रंथ 'भरतावर्ण' में ताल अंग के रूप में उद्धृत किया है तथा कुछ तालों के बोल भी दिये गये है। नारदकृत 'संगीत मकरंद' में मार्गी एवं देशी के 101 तालों की परिभाषा दी गई है। दत्तिल, मतंग, कोहल, अभिनवगुप्त, नान्यदेव आदि ग्रंथकारों ने ग्रंथ लिखे थे, ऐसा अन्य ग्रंथकारों के ग्रंथो में उनके मत का प्रतिपादन किये जाने से सिद्ध होता है। इनमें कुछ ग्रंथकारों के ग्रंथ पूर्ण स्वरूप में तथा कुछ के अपूर्ण स्वरूप में उपलब्ध होते हैं। उस समय की राजनीतिक स्थिति, सांस्कृतिक वातावरण, लोकरूचि कारणों ने संगीत को भी प्रभावित किया जो कि स्वाभाविक ही था। ऐसा प्रतीत होता है कि मार्गी के साथ देशी तालों का प्रभाव बढ़ता गया। तालों का निर्माण, पाटाक्षर की निकास विधि का विकास, तालों के बोलों का वादन, लोक अवनद्ध वाद्यों का महत्व एवं उनके वादन से यह स्पष्ट होता है कि यह जन–मानस के द्वारा प्रशंसनीय होता जा रहा था।

ताल की व्युत्पत्ति

नाट्यशास्त्र में ताल की व्याख्या इस प्रकार से की गई है–

तालों घन इति प्रोक्तः कला पात लयान्वितः।
कलास्तस्य प्रमाणं वै विज्ञेयं तालयोक्तृभिः।।[1]

कला पात और लय से युक्त जो काल का विभाग या परिमाणात्मक प्रमाण, जो घन वाद्य के द्वारा आता है– ताल कहलाता है। संगीत में जब ताल का व्यवहार होता है तब उसे समय के परिमापक कला शब्द से संबोधित किया जाता है और तब उसका अर्थ भी ताल का प्रमाणनिदर्शक काल होता है।

साधारण व्यवहार के काष्ठा, निमेष या पल के परिमाण को ताल प्रसंग में कला नहीं कहा जाता। निमेष काल को मात्रा कहा गया है तथा एक मात्रा से या मात्राओं के योग से बने गान समय को कला कहा गया। नाट्यशास्त्र में 1 मात्रा काल को लघु 2 मात्रा काल को गुरु एवं 3 मात्रा काल को प्लुत माना गया है।

संगीतरत्नाकर में 'ताल' शब्द की व्युत्पति इस प्रकार से बताई गई है–

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धातोर्धञि स्मृतः
गीतं वाद्यं तथा नृतं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।2।।[2]

प्रतिष्ठा अर्थ वाली 'तल' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के लगने से ताल शब्द की उत्पत्ति हुई है। गीत, वाद्य एवं नृत्त इसमें प्रतिष्ठित होते हैं, इसलिये इन्हें 'ताल' कहा जाता है। प्रतिष्ठा का अर्थ है एक सूत्र में बाँधना, व्यवस्थित करना, आधार प्रदान करना, स्थिरता लाना आदि। गीत, वाद्य और नृत्त के विभिन्न तत्वों को एक अवस्था प्रदान करके स्थिर बनाने वाला और आधार प्रदान करने वाला तत्व ही 'ताल' है। 'प्रतिष्ठानविशेष' यानी व्यवस्था करने का विशेष ढ़ंग। संगीतशास्त्र में प्रतिष्ठान यानी व्यवस्था का संपादन 'ताल' के द्वारा ही होता है।

'तले भवस्तालः'[3]

अर्थ है 'तल' में होने वाला 'ताल' है। बोलचाल की भाषा में 'तल' शब्द का अर्थ नीचे रहने वाला और धारण करने वाला होता है। किसी वस्तु को हाथ पर रखने के लिये 'हस्ततल' शब्द का प्रयोग किया जाता है। उस स्थिति में हाथ का वह भाग जो हस्ततल कहलाता है वस्तु के नीचे रहता है। पूरे शरीर के नीचे का भाग 'पदतल' कहलाता है। पृथ्वी के लिये पृथ्वीतल, अवनितल, भूतल का प्रयोग इसलिये किया जाता है कि वह हर वस्तु को अपने उपर धारण करती है। इसी तरह काल का आवृत्त होने वाला क्रियात्मक खंड, गीत, वाद्य और नृत्त को अपने उपर धारण करता है, वह 'ताल' है। 'अभिवनगुप्त' ने ताल में हाथ कि क्रियाओं के द्वारा परिच्छेद के उपाय की सुलभता और हस्ततल में 'तल' के द्वारा ताल के ग्रहण को स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है।

तत्र हस्तकियेति परिछेदसुलभ उपायः।
तयोर्हस्तयोः कियैव ताल इति सामान्यलक्षणं तले भव इति कृत्वा।[4]

प्रायः सभी मध्ययुगीन ग्रंथों में 'ताल' का 'त' और 'ल' इन दो अक्षरों को क्रम से 'शिव' और 'शक्ति' का सूचक मानकर 'तल' शब्द की निरूक्ति दी गई है और ताल को 'शिवशकत्यात्मक' कहा गया है।

संगीतरत्नाकर में तालों की रचना के लिये चिन्हों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। शारंगदेव ने द्रुत के लिये ½ , लघु के लिये 1, गुरु के लिये 2 एवं प्लुत के लिये 3 मात्राकाल बताये हैं तथा इनके चिन्ह इस प्रकार से हैं– द्रुत–0, लघु–I, गुरु-S, प्लुत–Ś, विराम–⁀

मार्गी ताल– चच्चत्पुट इस शब्द की व्याकरण सम्मत व्युत्पत्ति नहीं है। संस्कृत में श्रव्य ध्वनियों के आधार पर भी शब्द रचना कर ली जाती है। संभव है कि टूटना या विखरना अर्थ वाली 'चट्' धातु से यह अनुकरण शब्द बनाया गया हो। इससे होने वाली कियाओं के कालमान SSIŚ में अधुरेपन का, बिखने का भाव लगता है। अभिनवभारती में तथा अन्यत्र कुछ ग्रंथों में 'चञ्चत्पुट' नाम भी मिलता है, जो आगम परम्परा के समान सही नहीं है क्योंकि इस परम्परा में 4 ही अक्षरों के मेल से इस ताल का नामांकरण हुआ है और चञ्चत्पुट' में अ्' अक्षर बढ़ जाता है।

अभिनवगुप्त ने भरत के चच्चत्पुट और चाचपुट संबंधी श्लोक टीका में देने से पहले दो श्लोक और दिये है, जिनमें शिव के चार मुखों से इन तालों के 4 अक्षरों की उत्पत्ति बताई गई है। ये सारे श्लोक एक साथ एक क्रम में दिये गये हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि ये दो श्लोक भी नाट्यशास्त्र के मूलपाठ में होने चाहिये। श्लोक इस प्रकार हैं–

देवश्चतुर्भिर्निवश्वासैरक्षराणां चतुष्टयम्। उदीर्य तस्यातीते तु विश्रान्तो गिरिजापतिः।।
प्लुतान्तन्यासतो नाह्ययमुतमानां विधीयते। द्वितीयो न तथा तेन ह्यधमानां प्रतीयते।[5]

सार यह है कि अपने चार मुखों से चार निश्वासों में 4 अक्षरों का उच्चारण करके शिव विश्राम करने लगे। प्लुतान्त होने से चच्चत्पुट का विधान उत्तम प्रकृति में होता है और चाचपुट का अधम में। ये चार अक्षर च, त, प और ट है। अभिनवगुप्त के अनुसार इसके आवर्तन से अभ्युदय होता है, इसलिये आचार्यो ने 'चच्चत्पुट' एवं 'चाचपुट' शब्द बनाये।

पुराणे चागमादौ भगवतो महेश्वरस्य
वक्त्रचतुष्कोद्भूतमेतदक्षरचतुष्कमेतदावत्यंमानमभ्युदयदायीत्युक्तम्।
तदभिप्रायेण चच्चत्पुटश्चाचपुट इत्याचार्येर्निर्दिष्टम्[6]

चच्चत्पुटः इसमें चार अक्षर है, इसलिये इसे श्रेष्ठ माना गया और चाचपुट में 'त' को छोड़कर शेष तीन अक्षर होने से आगम परम्परा में इन्हे कमशः चतुरश्र एवं त्रस्य का प्रतीक माना गया।

चच्चत्पुट का यथाक्षर रूप इस प्रकार है–

च	च्च	त्पु	ट	शब्द
S	S	I	Ś	चिन्ह
गुरू	गुरू	लघु	प्लुत	अंग
2	2	1	3	मात्रा
सन्निपात	शम्या	ताल	शम्या	कियाएँ

अन्तिम अक्षर गुरू होते हुये भी भरत के विधान से प्लुत होता है।

चाचपुटः चच्चतपुट की तरह ही यह शब्द भी व्याकरण के अुनसार सिद्ध नहीं किया जा सकता। पूर्वोक्त आगम परम्परा के अनुसार इसका प्रयोग अधम प्रकृति में होता है। इसका यथाक्षर रूप इस प्रकार से है–

चा	च	पु	ट	शब्द
S	I	I	S	चिन्ह
गुरू	लघु	लघु	गुरू	अंग
2	1	1	2	मात्रा
शम्या	ताल	शम्या	ताल	कियाएँ

षट्पितापुत्रकः अभिनवगुप्त ने इस संज्ञा को अन्वर्थ कहा है लेकिन अन्यवर्थता सिद्ध नहीं की है। इसकी अन्यवर्थता को इस प्रकार से समझा जा सकता है इसके नाम में तीन शब्द है– षट्' पिता' और पुत्रकः' इससे ऐसा लगता है कि इस ताल का 6 संख्या और पितापुत्र से कुछ संबंध होने चाहिये। इसे समझने के लिये इसके यथाक्षर रूप को इस प्रकार से समझा जा सकता है–

षट्	पि	ता	पु	त्र	क	शब्द
Ś	I	S	S	I	Ś	चिन्ह
प्लुत	लघु	गुरू	गुरू	लघु	प्लुत	अंग
3	1	2	2	1	3	मात्रा
सन्निपात	ताल	शम्या	ताल	शम्या	ताल	कियाएँ

इसमें कुल 6 अक्षर हैं 6 कियाएँ है एवं 6 पदभाग है। ताल में दो खंड दिखाई देते है– ŚIS और SIŚ पहले खंड का ही प्रतिबिम्ब दुसरे खंड में है जैसे पिता का प्रतिबिम्ब पुत्र माना जाता है। सम्भवतः इसीलिये इस ताल का नाम षट्पितापुत्रक रखा गया। इस ताल की अन्य संज्ञायें पंचपाणि और उत्तर भी है लेकिन ये अन्यवर्थ नहीं है। भरत ने केवल पंचपाणि का एवं शारंगदेव ने दोनों का नाम लिया है। यह त्रस्य जाति का ताल है।

सम्पक्वेष्टाक– इसे षट्पितापुत्रक से उत्पन्न माना गया है क्योंकि इसमें भी आदि और अंत की कलाएँ प्लुत है। इसके यथाक्षर स्वरूप इस प्रकार हैं–

स	म्प	क्वे	ष्ट	क	शब्द
Ś	S	S	S	Ś	चिन्ह
प्लुत	गुरू	गुरू	गुरू	प्लुत	अंग
3	2	2	2	3	मात्रा
ताल	शम्या	ताल	शम्या	ताल	कियाएँ

इस ताल का नाम 'सम्पक्व' और 'इष्टिका' शब्दों से मिलकर बना है। व्याकरण की दृष्टि से यह नाम शुद्ध नहीं है, क्योंकि यहाँ 'इष्टिका' के स्थान पर इष्टाक' है। सम्पक्व का अर्थ है अच्छी तरह पकाई हुई और 'इष्टिका' का अर्थ है 'ईट'। इस प्रकार सम्पक्वेष्टाक का अर्थ हुआ 'अच्छी तरह पकाई हुई ईट वाला'।

लधु का अभाव व अंत में प्लुत, मध्य में गुरू की योजना इन कारणों से इस ताल में भारीपन एवं गम्भीरता की कल्पना होती है, इसका प्रयोग पूर्व रंग में गीतकों में होता था। इन गीतकों का प्रयोजन सामाजिकों की चित को नाट्य की ओर एकाग्र करके नाटय के रसास्वादन के लिये नींव तैयार करना था। संभव है सभी गुरुओं के कारण इस ताल को नींव तैयार करने में सहायक समझकर यह संज्ञा दी गई है।

उद्घट्टः यह त्रस्य जाति की ताल हैं, जिसमें 3 गुरु हैं। इसके यथाक्षर रूप इस प्रकार से हैं–

उद्	घट्	ट	शब्द
S	S	S	चिन्ह
गुरु	गुरु	गुरु	अंग
2	2	2	मात्रा
निष्क्राम	शम्या	शम्या	क्रियाएँ

वास्तव में यह त्रस्य को प्रतिनिधित्त्व करता है फिर भी इसके स्थान पर चाचपुट को ही प्रधानता दी गई है। क्योंकि इसका प्रयोग पूरे गीतक में न हो कर उल्लोप्यक और ओवेणक के अंग के भी छोटे से खंड में ही होता है।

'उत्' और 'घट्ट' के मेल से यह शब्द बना है। जिसका अर्थ है रगड़ा हुआ या घीसा हुआ। संभव है क्रियाओं की संख्या कम होने और सब गुरु होने के कारण इसमें घर्षण की अनुभूति हुई हो और इसी कारण यह संज्ञा दी गई है।

देशी तालः नाट्यशास्त्र में देशी संज्ञा या इससे संबंद्ध कोई भी विषय प्राप्त नहीं होता है। देशी तालों के बारे में भी वही स्थिति है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि पाँच मार्गी ताल के अतिरिक्त अन्य ताल नहीं थे या उनका प्रयोग नहीं था।

शांरगदेव ने देशी की व्याख्या करते हुये कहा है कि देश अथवा प्रांत के जन जन में प्रयुक्त रूचिपूर्ण एवं मन को भाने वाले लोकप्रिय गायन, वादन एवं नृत्य देशी कहे गये। विभिन्न जाति संप्रदाय आदि में व्याप्त संगीत देशी संगीत कहे गये।

देशी तालों में किस प्रकार की क्रियाओं का प्रयोग किया जाता था, इसका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। सशब्द या निःशब्द के प्रयोग का निर्देश इसमें न होने के कारण यह तो निश्चित है कि मार्ग

की तरह इन क्रियाओं का नियत प्रयोग नहीं होता था। 'संगीतरत्नाकर' में देशी तालों के नाम व लक्षण देखने से पता चलता है कि 'सिंहनंदन' और 'मंठ' तालों में अशब्द क्रियाएँ कही गई है। इनके अतिरिक्त अन्य किसी ताल में अशब्द क्रिया का प्रयोग नहीं है। इससे यह संकेत मिलता है कि शेष सभी क्रियाएँ सशब्द होंगी और 4 अशब्द होंगी। इनका रूप क्या था स्पष्ट नहीं है। वैसे भी सशब्द क्रिया के बिना काल का विभाजन संभंव नहीं है। और देशी तालों में समान मात्रा या आकार वाले अनेक तालों में लघु गुरु के विभिन्न सन्निवेशों के आधार पर अंतर होता है। यह भेद प्रमाण विशेष से की जाने वाली क्रियाओं से ही स्पष्ट हो सकता है।

अपरान्तक नाम गीतक पर टीका करते हुये कल्लिनाथ ने देशीताल में सशब्द क्रियाओं के विषय में एक संकेत दिया, जो इस प्रकार से हैः–

षट्पितापुत्रकस्य निजाः पाताः संताशताशताः तैर्विनेति देशीतालवत् शम्ययैव इत्येकः पक्ष।[7]

उपर्युक्त श्लोक के अंतिम अंश में यह कहा गया है कि देशी तालों के समान केवल शम्या का ही प्रयोग करना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि देशी तालों में केवल शम्या का ही प्रयोग हुआ करता था। शम्या में दाहिने हाथ से बायें हाथ पर ताल दिया जाता है, जो सशब्द क्रिया का सरलतम और मूल रूप कहा जा सकता है।

इन उल्लेखों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देशी तालों में प्रत्येक अव्यव के साथ हाथ में कांस्यताल से एवं घनवाद्यों द्वारा प्रदर्शित की जाती रही होगी और कहीं कहीं अवयव पर निःशब्द क्रिया भी रहती होगी। यह निश्चित है कि एक अवयव से दूसरे अवयव को भिन्न रखने के लिये अर्थात् एक निश्चित नाप के द्वारा काल का भंजन करने के लिये सशब्द क्रिया अनिवार्य है तथा काल भंजन किसी भी क्रिया के द्वारा संभव है। देशी तालों के प्रयोजन को देखते हुये शम्या जैसी किसी भी क्रिया के द्वारा उपर्युक्त कार्य आसानी से हो सकता है। संभवतः इसीलिये किन्हीं क्रियाओं के प्रयोग का कोई निश्चित विधान देशी ताल में नहीं किया गया।

मुगलों के आक्रमण तथा भारत के छोटे–छोटे राज्यों के आपसी मतभेदों के कारण प्राचीन संगीत बिखर गया था। इसी कारण प्रत्येक राज्यों में लोगों के रूचिनुसार गायन, वादन एवं नृत्य का प्रचार प्रसार होता गया। यह कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत के स्थान पर लोक संगीत लोक नृत्य तथा लोक वाद्यों का प्रचलन एवं छोटे तालों का प्रचलन बढ़ता गया। शांरगदेव ने अलग–अलग राज्यों में भ्रमण कर वहाँ के गुणीजनों से अलग–अलग प्रकार के गायन, वादन, नृत्य एवं तालों का अध्ययन किया तथा उसी के आधार पर 120 तालों की रचना की।

द्रुतादि अवयवों के विभिन्न प्रकार के सन्निवेशों के आधर पर देशीताल के अनेक प्रकार हैं। संगीतरत्नाकर में दिये गये 120 देशी तालों के सम्पूर्ण लक्षण यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनके क्रम संख्या, तालों के नाम एंव लक्षण इस प्रकार से हैं–

1.	आदि ताल (रास)	I	2.	द्वितीय	00I	3.	तृतीय	00Ó
4.	चतुर्थ	II0	5.	पंचम	00	6.	निःशंकलील	ŚŚSSI
7.	दर्पण	00S	8.	सिंहविक्रम	SSSIŚISŚ	9.	रतिलील	IISS
10.	सिंहलील	000I	11.	कंदर्प	00ISS	12.	वीरविक्रम	IOOS
13.	रंग	0000S	14.	श्रीरंग	IISIŚ			
15.	चंचरी	0Ó0Ó0Ó0Ó0Ó0Ó0Ó0Ó				16.	प्रत्यंग	SSSII
17.	यतिलग्न	0I	18.	गजलील	IIIÍ	19.	हसंलील	IÍ
20.	वर्णभिन्न	00IS	21.	त्रिभिन्न	ISŚ	22.	राजचूड़ामणि	00III00IS
23.	रंगोद्योत	SSSIŚ	24.	रंगप्रदीप	SSISŚ	25.	राजताल	SŚ00SIŚ
26.	त्र्यश्रवर्ण	II00II	27.	सिंहविकीडित	IŚSŚŚSISŚIŚ	28.	जय	ISIIOOŚ
29.	वनमाली	0000I00S	30.	हंसनाद	IŚOOŚ	31.	सिंहनाद	ISSIS
32.	कुडुक्क	00II	33.	तुरंगलील	Ó0Ó0	34.	शरभलील	II0000II
35.	सिंहनन्दन	SSISISŚ00SSIŚIŚSII+++				36.	त्रिभंगी	IISS
37.	रंगाभरण	SSIIŚ	38.	मण्ठ	IIS++++	39.	कोकिलाप्रिय	SIŚ
40.	निःसारूक	ÍÍ	41.	राजविद्याधर	IS00	42.	जयमंगल	IISIIS
43.	मल्लिकामोद	II000	44.	विजयानन्द	IISSS	45.	क्रीडा	Ó0Ó
46.	जयश्री	SISIS	47.	मकन्द	00III	48.	कीर्तिताल	ŚSIŚ
49.	श्रीकीर्ति	SSII	50.	प्रतिताल	II00	51.	विजय	ŚSŚI
52.	विन्दुमाली	S0000S	53.	सम	IIÓÓ	54.	नन्दन	I00Ś
55.	मण्ठिका	S0Ś	56.	दीपक	00IISS	57.	उदीक्षण	IIS
58.	ढ़ेड्की	SIS	59.	विषम	000Ó0000Ó	60.	वर्णमण्ठिका	II00I00
61.	अभिनंदन	II00S	62.	अनंग	IŚIIS	63.	नान्दी	I00IISS
64.	मल्लताल	IIII0Ó	65.	कंकाल, पूर्णकंकाल 0000SI खंडकंकाल 00SS समकंकाल SII				
66.	कंदुक	IIIIS	67.	एकतालीo	68. कुमुद	I00IIS	विषमकंकाल	IIIIS
69.	चतुस्ताल	S000	70.	डोम्बुली	ÍÍ	71.	अभंग	IŚ
72.	रायवंकोल	SIS00	73.	वसंत	IIISSS	74.	लघुशेखर	Í
75.	प्रतापशेखर	Ó0Ó	76.	झंपाताल	Ó0I	77.	गजझम्प	S00Ó
78.	चतुर्मुख	ISIŚ	79.	मदन	00S	80.	प्रतिकंठ	IISSII
81.	पार्वतीलोचन	SSSIŚSS00				82.	रतिलाल	IS

83.	लीलाताल	0IŚ	84.	कारणयति	0000	85.	ललित	00IS
86.	गारूगी	000ó	87.	राजनारायण	00ISIS	88.	लक्ष्मीश	0óIŚ
89.	ललितप्रिय	IISIS	90.	श्रीनन्दन	SIIŚ	91.	जनक	IIIISSIISS
92.	वर्धन	00IŚ	93.	रागवर्धन	0ó0ó	94.	षट्ताल	000000
95.	अंतरक्रीडा	00ó	96.	हंस	Iĺ	97.	उत्सव	IŚ
98.	विलोकित	S00Ś	99.	गज	IIII	100.	वर्णअति	II00
101.	सिंह	I0III	102.	करण	S	103.	सारस	I000II
104.	चण्डताल	000II	105.	चन्द्रकला	SSSŚŚŚI	106.	लय	SIŚŚŚSŚ000
107.	स्कन्द	SIS00SS	108.	अड्डताली	0II	109.	धत्ता	II00IS
110.	द्वन्द्व	IISSSIŚ	111.	मुकुन्द	I0000S	112.	कुविन्दक	I00SŚ
113.	कलध्वनि	IISIŚ	114.	गौरी	IIIII	115.	सरस्वतीकण्ठाभरण	SSII00
116.	भग्नताल	0000IIĺ	117.	राजमृगांक	00IŚ	118.	राजमार्तण्ड	SI0
119.	निःशंक	ISSŚSSSI	120.	शारंगदेव	00SŚSSI			

विभिन्न ग्रंथकारों ने देशी ताल की चर्चा अपने ग्रंथों में की है जिनमें तालों की संख्या में समानता नहीं है। मानसोल्लास में 30, संगीतचूड़ामणि में 96, संगीतरत्नाकर में 120 एवं संगीतराज में 138 बताये गये हैं। संगीतराज के 138 में 119 संगीतरत्नाकर के ही हैं। इनके ताल लक्षण भी कहीं कहीं भिन्न दिखाई पड़ते हैं।

संदर्भ

1. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल (1985), हिन्दी नाट्यशास्त्र (पृ॰सं॰ 109), वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान
2. चौधरी, सुभद्रा (2006), शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर (सरस्वती व्याख्या अनुवाद सहित) (पृ॰सं॰ 2), नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन
3. चौधरी, सुभद्रा (1984), भारतीय संगीत ताल और रूप–विधान (पृ॰सं॰ 7), अजमेर : कृष्णा ब्रदर्स
4. चौधरी, सुभद्रा (1984), भारतीय संगीत ताल और रूप–विधान (पृ॰सं॰ 8), अजमेर : कृष्णा ब्रदर्स
5. चौधरी, सुभद्रा (1984), भारतीय संगीत ताल और रूप–विधान (पृ॰सं॰ 34), अजमेर : कृष्णा ब्रदर्स
6. वही
7. चौधरी, सुभद्रा (1984), भारतीय संगीत ताल और रूप–विधान (पृ॰सं॰ 69), अजमेर : कृष्णा ब्रदर्स

* मिश्रा, पं. छोले लाल (2006), ताल प्रबन्ध (पृ॰स॰ 108–113), दिल्ली : कनिष्का पब्लिकेशन